बिहार का वंचित समुदाय : अतीत और वर्त्तमान

डॉ0 शंकर जय किशन चौधरी अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग
वी0एस0 जे0 कालेज, राजनगर, मधुबनी

तेज विकास के मौजूदा दौर ने बिहार के वंचित समाज के अभ्युत्थान की अपार संभावनाओं का दरबाजा खोला है, मानो दोजख की जिन्दगी बसर करनेवालों के लिए स्वर्ग का द्वार खुल गया हो। शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा एवं संरक्षा, आवास, रोजगार, शासन में सहभागिता, स्वावलम्बन, स्वविकास और मान–सम्मान एवं आर्थिक समृद्धि के अवसरों की मुकम्मल व्यवस्था आज के बिहार का ऐतिहासिक यथार्थ है, जिसके लिए वंचित समाज पिछली दो सदियों से संघर्षरत रहा है। वस्तुतः आज का बिहार शोषण मुक्त, समरस, समृद्ध एवं समतामूलक समाज निर्माण के राष्ट्रीय लक्ष्य को हासिल करने की और सदियों से हाशिए पर रखे गए विशाल बहुसंख्यक वंचितों को समाज की मुख्यधारा में प्रतिष्ठित किए जाने की एक ठोस उम्मीद जगाती है। इस परिस्थिति के निर्माण में जहाँ एक ओर सुशासन और विकास की सुचिन्तित दृष्टि का योगदान है, वहीं दूसरी ओर पिछली दो सदियों के दौरान अनवरत जारी दलित संघर्ष का भी भारी अवदान है। निस्संदेह अतीत और वर्त्तमान के इस सुखद संयोग ने ही स्वर्णिम भविष्य की सुनिश्चित संभवना पैदा की है, जिसका सम्यक विवेचन समीचीन होगा।

वंचित समाज के अतीत और उसके संधर्ष की महागाथा की चर्चा से पूर्व वंचित समाज को परिभाषित कर लेना जरूरी है। भारतीय सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही समाज के विशाल बहुसंख्यक श्रमजीवी तबका को समानता, स्वतंत्रता, नागरिक अधिकारों, शिक्षा, शासन, आर्थिक समृद्धि आदि के अवसरों से हमशा यत्नपूर्वक वंचित रखा गया। धर्मशक्ति और दंडशक्ति का सहारा लेकर उन्हें समाज तथा संस्कृति की मुख्यधाारा में शामिल होने से रोका गया। अनेक प्रकार के निषेधों तथा बन्धनों में आबद्ध गुलामी, गरीबी, अज्ञानता तथा अपमान की जिन्दगी जी रहा शोषित, प्रताड़ित, उपेक्षित और पददलित समाज ही वंचित समाज है, जिन्हें प्राचीन और मध्यकाल में निम्न शूद्र अथवा अस्पृश्य कहा गया और आधुनिक काल में हरिजन अथवा दलित कहकर पुकारा जाता रहा है। वंचित समाज में उन सारे जातीय समूहों को परिगणित किया जा सकता है, जिन्हें या तो अछूत माना जाता था अथवा जिनका जातीय पेशा ही अपने से उच्च वर्णों एवं जातियों की सेवा करना था। दूसरी श्रेणी के बहुसंख्यक लोग खेत मजदूर और सेवक थे, जो कमिया प्रथा के द्वारा अपने मालिकों से बंधे होते थे। ये बंधुआ मजदूर अथवा अर्द्धदास थे, जिनपर मालिकों के अकथनीय अत्याचार होते थे। ये नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त थे। भारत में ब्रिटिश राज की स्थापना के बाद असंख्य निम्नजातीय छोटे किसान लगान

के भारी बोझ और जमीन्दारों के उत्पीड़न तथा महाजनों के दोहन के शिकार होकर कमिया बनने के लिए मजबूर होते रहे। ये बिहार के विभिन्न हिस्सों में बकिहया, जन, बड़जन, हरवाह, सेवक, कमती आदि अनेक नामों से जाने जाते थे, जो वस्तुतः निम्न जातीय शूद्र थे। सभी सेवक जातियाँ अछूत नहीं मानी जाती थीं, लेकिन स्वामी जातियों के उत्पीड़न से ये समान रूप से पीड़ित थे। इनमें से कई तो कर्जे के कारण बांड के तहत पीढ़ी दर पीढ़ी कमियागिरी के लिए अभिशप्त थे तो मुसहर, भुइयाँ, धनकार, धानुक, क्योट, अमात आदि अनेक जातियाँ जातीय आधार पर सेवक अथवा कृषि दास के रूप में थीं। लेकिन उन जातियों की तादाद कहीं अधिक थी, जिनके लिए सामाजिक–धार्मिक अयोग्यताएँ निर्धारित कर पूरे तौर पर अछूत माना जाता था।[1] पहलीबार 1931 के गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर सरकार ने अछूत जातियों की अनुसूची तैयार की, जिसे 1935 के अधिनियम के आधार पर 1936 में आर्डर इन कौंसिल में शामिल कर लिया गया और इस प्रकार संवैधानिक भाषा में अछूत जातियों के सामाजिक संवर्ग को चिÐित किया गया, जिन्हें अनुसूचित जाति आथवा दलित वर्ग कहा गया। इस अनुसूची में बिहार की वे जातियाँ भी शामिल थीं, जिनकी सरकार की नजर में दलित वर्ग कहा गया। इस अनुसूची में बिहार की वे जातियाँ भी शामिल थीं, जिनकी सरकार की नजर में आपराधिक पृष्ठभूमि थी। इन जातीय समूहों को जमीन्दारों का अत्याचार तो सहना ही पड़ता था, सरकार भी 'द क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट बनाकर पुलिस द्वारा प्रताड़ित करती थी। इस अधिनियम के अन्तर्गत इस कोटि की दलित जातियों के 13 साल के बच्चे से लेकर सारे स्त्री–पुरुष को स्थानीय प्रशासन की कड़ी निगरानी और कठोर दंड एवं उत्पीड़न के साये में सारी जिन्दगी गुजारनी पड़ती थी। इस कोटि की जातियों में दुसाध, मगहिया डोम, बंसफोड़वा डोम, डोम, रजवार, मुसहर आदि थे। आजादी के बाद 1951 में हुई पहली जनगणना के अनुसार बिहार में दलित जातियों की कुल आबादी 50, 57, 812 थी जा प्रदेश की कुल जनसंख्या का 12.6 प्रतिशत थी। दलित जातियों की इस कुल आबादी के 96.5 प्रतिशत में नौ दलित जातियाँ – दुसाध, चमार, मसहर, भुइयाँ, धोबी, पासी, बाउरी, डोमी और रजवार जातियाँ थीं। वंचित समुदाय के दूसरे सवंर्ग में निम्न शूद्र जातियाँ थीं जिन्हं अत्यन्त पिछड़ी जाति कहा जाता है। 1951 में तेली, धानुक, नाई, कहार, मल्लाह, ततमा, लोहार, कुम्हार, बढ़ई आदि निम्न शूद्र जातियाँ कुल आबादी का 30 प्रतिशत थीं। फिर आजादी मिलने के बाद बिहार में पसमान्दा मुसलमानों की तादाद 10 प्रतिशत थी, जबकि जनजातियों की संख्यया 9.1 प्रतिशत थी।[2] इस प्रकार आजादी मिलने के समय बिहार की कुल जनसंख्या का लगभग 62 प्रतिशत हिस्सा वह था, जिन्हें सदियों से नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया था। हालांकि औपनिवेशिक काल में बिहार के इस विशाल वंचित समुदाय ने देश के बदलते परिदृश्य और राष्ट्रवाद के बढ़ते जोर के साथ बहुत कुछ

हासिल किया था, लेकिन मंजिल काफी दूर थी। अब भी वे समाज की मुख्य धरा के हाशिए पर ही थे। इसके पूर्व कि आजादी के बाद 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बिहार के वंचित समाज की स्थिति का आंकलन और इस तरह वर्त्तमान दौर को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन किया जाय, औपनिवेशिक काल में वंचित समाज की दशा–दिशा का सर्वेक्षण अप्रासंगिक नहीं होगा। यह इस लिहाज से भी उपयुक्त होगा कि अतीत के अध्ययन के द्वारा ही वर्त्तमान को समझा जा सकता है और एक बेहतर भविष्य की संभावनाओं का निरूपण ही नहीं, बल्कि उसके निर्माण की राह भी तलाश की जा सकती है।

I

भारत में ब्रिटिश राज की स्थापना के साथ जहाँ एक तरफ उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष प्रारम्भ हुआ, वहीं दूसरी ओर उन कारणों की खोज और उनके निराकरण का प्रयत्न भी प्रारम्भ हुआ, जिनके फलस्वरूप भारत जैसे विशाल देश को साम्राज्यवादी दासता की श्रृंखला में आबद्ध करने में अंग्रेजों को सफलता मिली थी। पुनः एक आधुनिक शक्ति का प्रतिरोध एक आधुनिक समाज ही कर सकता था। अतः भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन और सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया की शुरूआत लगभग एक साथ हुई। वस्तुतः उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष न केवल ब्रिटिश राजसत्ता से स्वाधीनता का राजनीतिक संघर्ष था, अपितु भारतीय समाज की पुनः रचना का एक प्रबल आन्दोलन भी था। 19वीं सदी के सामाजिक–धार्मिक आन्दोलनों को इसी प्ररिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए, जिन्होंने अन्य चीजों के अलावा छूआछूत, जातीय विभेद और सामाजिक–धार्मिक अयोग्यताओं पर जोरदार प्रहार किया। सामाजिक–धार्मिक आन्दोलनों ने सामाजिक समानता और आधुनिक शिक्षा के प्रसार की जमकर वकालत की, जिसके लिए वंचित समाज युगों से तरसता रहा था। हालांकि सत्ताकेन्द्र की परिधि पर होने के कारण बिहार में समाजिक सुधार आन्दोलन की अनुगंज बंगाल की अपेक्षा काफी देर से सुनाई पड़ी, लेकिन इसका एक निश्चित प्रभाव पड़ा। खासकर आर्यसमाज आंदोलन ने बिहार के दलित एवं पिछड़ा वर्ग के लोगों को काफी आकर्षित किया।[3] ब्रह्म समाज और रामकृष्ण मिशन ने भी वंचित समाज के लिए शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य किए। अनमने तौर पर ही सही सरकार द्वारा भी कुछ सकारात्मक कानून बनाए गए। उदाहरणस्वरूप 1843 के अधिनियम V, 1859 तथा 1860 के अधिनियमों तथा कतिपय काश्तकारी अधिनियमों के द्वारा वंचित समाज के लोगों पर उनके स्वामियों के द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों की रोकथाम का कानूनी प्रावधान किया गया। फिर 1919 में एक अधिनियम के द्वारा कमिया प्रथा को अवैध घोषित किया गया। क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट के तहत आनेवाली जातियों के पुनर्वास तथा भूमि बन्दोबस्ती की व्यवस्था की गई।[4] समाज सुधार आन्दोलन और सरकारी प्रयत्नों का दायरा अत्यन्त ही सीमित था और बिहार की आबादी के लिहाज से इसे नगण्य ही माना जा सकता है। लेकिन

सामाजिक–आर्थिक रूपान्तरण की प्रक्रिया 19वीं सदी में शुरू हो चुकी थी, परिवर्त्तन का चक्र चल पड़ा था। विद्यमान सामाजिक रूढ़िग्रस्तता और संकीर्णता के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह कम बड़ी बात नहीं थी। भले ही वृहत्तर वंचित समाज की यथास्थिति क्यों न बनी रहे, तालाब के शांत जल में कंकड़ फेका जा चुका था।

सामाजिक सुधार आंदोलन ने दलित विमर्श की पृष्ठभूमि तैयार की और 20वीं सदी के प्रथम दशक के अन्त तक आते–आते इसने ठोस रूप ग्रहण कर लिया।[5] दिसम्बर 1909 में बड़ोदरा के गायकवाड़ का एक लेख 'द डिप्रेस्ड क्लासेज ऑफ इंडिया' द इंडियन रिव्यू में प्रकाशित हुआ।[6] गायकवाड़ के अनुसार भारतीय नवजागरण का भविष्य दलित प्रश्न के समाधान पर निर्भर करता है। उनका कहना है कि अस्पृश्यता की अवधारणा का ध्येय दलित वर्गों को सभ्यता के लाभों से, शिक्षा तथा समाज के संरक्षण से सदा के लिए वंचित रखना है। अतः जरूरी है कि न केवल अस्पृश्यता का पूरी तौर पर निवारण किया जाय, बल्कि सामाजिक रूप से ऊपर उठने के लिए दलितों को शिक्षा तथा रोजगार के भरपूर अवसर भी दिए जाएँ। गायकवाड़ का मानना था कि जबतक जातिगत पेशा का विकल्प नहीं उपलब्ध कराया जाता, तबतक दलितों का उत्थान संभव नहीं। उन्होंने सामाजिक–धार्मिक कुरीतियों की समाप्ति के लिए स्वयं दलित वर्ग को आगे बढ़ने का आह्वान किया और सरकार से अपील की कि सिर्फ समानता का कानून बना देना काफी नहीं, बल्कि इस कानून को उपभोग के लायक बनाना भी जरूरी है। अतः सरकार का दायित्व बनता है कि वह दलितों की प्रगति के लिए यथेष्ट भौतिक संसाधन और अवसर भी जुटाए। लाला लाजपत राय का मानना था कि दलितों को समाजिक समानता प्रदान करने के लिए आन्दोलन संगठित किया जाना चाहिए।[7] उनका कहना था दलित वर्ग के लिए जो चीज तत्काल जरूरी है, वह है शिक्षा। शिक्षा के जरिए ही उनके बीच से नेता और सुधारक पैदा होंगे। तभी उन्हें सामाजिक संरचना में हैसियत तथा स्थान प्राप्त होगा। दलित विमर्श में हस्तक्षेपव करनेवाली एनी वेसेंट की भी यही धारणा थी कि शिक्षा ही एकमात्र वह साधन है, जिसके द्वारा हम दलितों को ऊपर उठाने की आशा रख सकते हैं।[8] गोपाल कृष्ण गोखले ने सीधे शिक्षित भारतीयों से अपील की कि ''उन्हें शिक्षित बनाएँ और उनके लिए सम्मानजनक रोजगार तलाशें।''[9] इसी समय टी0 वी0 शेषगिरि अय्यर ने उच्चवर्णीय हिन्दुओं को चेतनावनी दी कि यदि वे दलितों के उत्थान के कार्यो को इसाई मशीनरियों की तरह तत्परता से अपने हाथों में नहीं लेते तो समाज में फूट और विघटन की एक ऐसी अपूरणीय क्षति होगी, जिससे भारतीय राष्ट्रवाद तार–तार हो जायगा।[10] दलित वर्ग मिशन के अध्यक्ष न्यायमूर्त्ति नारायण चंदावरकर का कहना था कि महान सन्तों के संदेश दलित वर्गों को ऊँचा उठाते हैं।'[11] प्रथम विश्वयुद्ध के समय तक दलित विमर्श में शामिल प्रायः सभी बुद्धिजीवियों का मानना था कि

दलितों का उत्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील राष्ट्रीय एजेन्डा है, जिसके बिना उपनिवेशवाद विरोधी एक दुरूस्त लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती और उत्थान का रास्ता अस्पृश्यता के पूर्ण उन्मूलन, सामाजिक–धार्मिक अयोग्यताओं की पूरी समाप्ति और शिक्षा तथा रोजगार के भरपूर अवससर की उपलब्धता के द्वारा ही प्रशस्त किया जा सकता था। दलित प्रश्न इतना ज्वलन्त राष्ट्रीय मुद्दा बन चुका था कि कांग्रेस भी इसकी अनदेखी नहीं कर सकती थी। दक्षिणपंथियों के दबाव में सामाजिक सुधार के प्रश्न को 19वीं सदी के अन्तिम वर्षों में हाशिए पर डाल चुकी कांग्रेस के 1917 में आयोजित कलकत्ता अधिवेशन में बाजाप्ता प्रस्ताव पारित कर यह कहा गया कि, ''कांग्रेस का भारत की जनता से अनुरोध है कि भारत के दलित वर्गों पर जो रूढ़िगत अयोग्यताएँ लगाई हुई हैं, उन्हें हटाने की आवश्यकता न्याय संगत है, क्योंकि ये अयोग्यताएँ अत्यन्त अमानुषिक और दमनकारी हैं, जिस कारण इन्हें बहुत अधिक कठिनाइयाँ और असुविधाएँ सहनी पड़ती हैं।'' इस प्रस्ताव को पेश करते हुए 'द माडर्न रिव्यू' के सम्पादक जी. एन. नतेशन ने यह कहा कि पानी, पाठशाला और परलोक (मन्दिर) सम्बन्धी दलितों पर लगाए गए सभी प्रतिबन्ध समाप्त किए जाएँ। जाहिर है कि अब दलित प्रश्न राष्ट्रीय एजेन्डा में प्रमुखता हासिल कर चुका था।[12]

राष्ट्रीय स्तर पर हो रही हलचलों से बिहार अप्रभवित नहीं रह सकता था। यह वह दौर था जब बिहार में जातीय सभाओं और समाजों की बाढ़ आयी थी। वंचित समाज की अनेक जातियों की जातीय सभाएँ अपनी–अपनी जाति में सुधार आन्दोलन चला रही थीं।[13] बिहार में आर्य समाज आन्दोलन ने भी काफी गति पकड़ी और इसकी प्रेरणा पर जनेऊ आन्दोलन चला। लेकिन आर्य समाज का जितना अधिक प्रभाव पिछड़ी जातियों में था, उतना दलित जातियों में नहीं था। 1917 के कलकत्ता अधिवेशन में अस्पृश्यता निवारण प्रस्ताव पारित हुआ था और उसी वर्ष महात्मा गाँधी भी बिहार आए। चम्पारण में उन्होंने नील सत्याग्रह के अतिरिक्त रचनात्मक कार्यक्रम की नींव रखी। जिसमें शामिल छूआछूत की समाप्ति, शिक्षा प्रसार और स्वास्थ्य सेवा जैसे कार्यक्रमों ने दलितों को आकर्षित किया।[14] बिहर में कई सेवा दल क्रियाशील थे, जिनके रचनात्मक कार्यक्रमों में अछूतों के बीच सुधारवादी कार्य भी शामिल था। इस समय प्रकाशित होने वाली सुधारवादी पत्र–पत्रिकाओं में छूआछूत पर जमकर प्रहार किए जाते थे। इसी परिस्थिति में बिहार में दलित चेतना का विकास हुआ। यह महसूस किया गया कि एक स्वतंत्र नागरिक के रूप में समान अधिकार पाने के लिए दलितों को सर्वप्रथम उन सामाजिक–धार्मिक अयोग्यताओं से मुक्ति पानी चाहिए, जिसके कारण वे सदियों से बहिष्कृत नारकीय जीवन जी रहे थे। फलतः बिहार में एक प्रबल जनआन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसकी कार्यसूची में तीन मुद्दे शामिल थे–सार्वजनिक कुओं से पानी, सार्वजनिक पाठशालाओं में दलित छात्रों का दाखिला और मन्दिरों

में दलितों का प्रवेश। इन तीनों अधिकारों को हासिल करने का रास्ता अस्पृश्यता निवारण के मार्ग से होकर गुजरता था। अतः 1920–30 के दशकों बिहार के ऐतिहासिक जनआन्दोलन को अस्पृश्यता निवारण आंदोलन कहा गया।[15]

अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन को बिहार में आर्यसमाज, कांग्रेस, हिन्दू महासभा और कई सेवा दलों ने संगठित किया था।[16] यह गौरतलब है कि बिहार के दलितों के हृदय में डॉ0 अम्बेदकर के प्रति सम्मान का भाव तो था, किन्तु उन्होंने गाँधीवादी मार्ग चुना। इसका प्रमुख करण था–बिहार की अपेक्षाकृत उदार और साझी संस्कृति। बिहार की सांस्कृतिक विशिष्टता के कारण ही बिहार के सवर्णों के बहुत बड़े तबके ने अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। आर्यसमाज ने इस आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की[17] और कांग्रेस तथा हिन्दू महासभा ने इसे परवान चढ़ाया। इस प्रकार महाराष्ट्र और दक्षिण भारत से बिहार की स्थिति भिन्न थी। यहाँ भारत के अन्य हिस्सों की तरह विरोध की प्रखर कट्टरता तथा संकीर्णता नहीं थी। यही कारण है कि बिहार का दलित आन्दोलन इतिहासकारों का बहुत अधिक ध्यान आकर्षित नहीं कर पाया। लेकिन यह ऐतिहासिक यथार्थ है कि बिहार का दलित आन्दोलन सिर्फ दलितों का न होकर एक व्यापक जन–आन्दोलन था, जिसने सामाजिक रूपान्तरण और इस तरह दलितों के उत्थान में एक महती भूमिका का निर्वाह किया।

बिहार के मुख्य सचिव एम.एन.सी. फेर्टसन द्वारा 31 जनवरी 1919 को भारत के मुख्य सचिव को लिखे गए पत्र में यह प्रतिवेदित किया गया था, कि ''सामाजिक समस्याओं और जातीय अयोग्यताओं को लेकर आयोजित सभाएँ राज्य के विभिन्न हिस्सों में दिन पर दिन लोकप्रिय हो रही हैं। इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं कि नीची जाति के लोग सभाओं के माध्यम से अपने को स्थापित कर रहे हैं और भेदभावपूर्ण परम्पराओं के खिलाफ अपने को संगठित कर रहे हैं, ताकि इन परम्पराओं को दूर किया जा सके।''[18] जाहिर है कि बिहार में दलित आन्दोलन गति पकड़ रहा था। 1922 में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के गया अधिवेशन में छूआछूत के खिलाफ प्रस्ताव पारित किया गया। इसी वर्ष चम्पारण के डोम कांग्रेस के स्वयंसेवक बने। उल्लेखनीय है कि कांग्रेस के स्वयंसेवकों से अस्पृश्यता के विरूद्ध शपथ कराया जाता था। 1923 में आर्य समाज के मुजफ्फरपुर में आयोजित वार्षिकोत्सव में अछूतोद्धार सम्मेलन, अस्पृश्यता उन्मूलन और उपनयन संस्कार कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। इसी वर्ष पटना में भंगी टोली के लोगों को जनेऊ धारण कराया गया। 1925 में मधुबनी में आर्य समाज द्वारा दलितोद्धार कार्यक्रम बड़े पैमाने पर चलाया गया।[19] 1925 में ही प्रान्तीय सेवा समिति के अधिवेशन में दलितोद्धार का मुद्दा प्रमुखता से उठाया गया। अप्रल 1927 में हिन्दू महासभा का दसवाँ राष्ट्रीय सम्मेलन पटना में आयोजित हुआ, जिसमें छूआछूत के विरूद्ध और दलितों के

मन्दिर–प्रवेश के पक्ष में प्रस्ताव पारित किए गए। इस सम्मेलन के दौरान अलग से अछूतोद्धार सम्मेलन का भी आयोजन हुआ।[20] सच्चिदानन्द सिन्हा, गणेशदत्त सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह, राहुल सांकृत्यायन, राजेन्द्र प्रसाद आदि बिहार के प्रायः सभी दिग्गज नेताओं ने इस सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में अस्पृश्यता निवारण और शुद्धि पर जोर दिया गया।[21] मई 1927 में वैशाली जिला के महुआ बाजार में आर्यसमाजियों ने स्थानीय डोम जाति के लोगों के साथ सार्वजनिक कुओं पर धावा बोला। हलके प्रतिरोध के बाद उन्हें विभिन्न कुओं से पानी भरने की छूट मिल गई।[22] लेकिन पटना में एक ऐसे ही प्रदर्शन में टकराव हो गया और पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ा। अक्टूबर 1928 में राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में आयोजित अछूतोद्धार सम्मेलन में प्रस्ताव पारित कर सवर्ण हिन्दुओं से दलितों के लिए सड़क, मन्दिर और कुओं को मुक्त कर देने की अपील की गई।[23] इसी वर्ष दानापुर में आर्यसमाज द्वारा आयोजित रामनवमी उत्सव में लगभग चार सौ चमार, डोम और मुसहर जातियों के लोग ने हिस्सा लिया। औरंगाबाद के देव में आयोजित हिन्दू सम्मेलन में यह घोषणा की गई कि अछूतों को मन्दिर प्रेवश का अधिकार है।[24] 1920 के दशक में बिहार के प्रायः सभी शहरों में ऐसे सहभोजों का आये दिन आयोजन किया जाता था, जिसमें सभी जातियों के लेाग एक साथ मिलकर भोजन करते थे। पटना से प्रकाशित होनेवाली 'देश' पत्रिका ने बिहार में दलित प्रश्न की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कराया और एक बड़े आन्दोलन के लिए जनजागृति पैदा की। 1930 में हजारीबाग, राजपूत जिला सभा के द्वारा जारी एक पर्चा में यह कहा गया कि दलितों के सवालों को क्षत्रिय जाति और सम्पूर्ण राष्ट्र को भी उठाना चाहिए।[25] जाहिर है कि बिहार के सवर्णों की मानसिकता बदल रही थी। ऊँची जाति के वर्चस्ववाली कांगेस तथा हिन्दू महासभा और पिछड़ी जाति के प्रभावशाली आर्य समाज जैसी संस्थाओं द्वारा दलित आंदोलन की कमान सम्हाले जाने के कारण बिहार में कट्टरपंथी ताकतें अलग–थलग पड़ गयीं और दलित प्रश्न पर एक ऐसे जन आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार हुई, जिसका चरित्र महाराष्ट्र और दक्षिण भारत से बिल्कुल भिन्न था।

1932 में मन्दिर प्रवेश आन्दोलन का व्यापक विस्तार हुआ। गया, सीतामढ़ी, हाजीपुर, बेतिया, मेातिहारी, रक्सौल, शाहाबाद, नवादा, औरंगाबाद आदि अनेक नगरों में धूमधाम के साथ दलितों को मन्दिर प्रवेश कराया गया, जहाँ उन्होंने पूजा अर्चना की। बिहार के प्रायः सभी शहरों में सवर्ण हिन्दुओं तथा दलितों की सम्मिलित सभाओं का आयोजन आए दिन होने लगे, जिनमें पानी, शिक्षा और मंदिर के द्वार दलितों के लिए पूरी तरह खोलने की साझी घोषणा की जाती थी। 27 सितम्बर 1932 से 3 अक्टूबर 1932 के बीच पूरे बिहार में अस्पृश्यता निवारण सप्ताह मनाया गया। अबतक अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन जिसे कुओं के उपयोग और स्कूलों तथा मन्दिरों में प्रवेश का मसला जुड़ा था, बिहार के सभी नगरों और कस्बों तक फैल चुका था।[26]

इस आंदोलन को संगठित रूप प्रदान करने के लिए राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की अध्यक्षता में 6 नवम्बर 1932 को पटना में अस्पृश्यता विरोधी सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में बिहार के प्रायः सभी हिस्सों से लगभग दो हजार प्रतिनिधियों ने भाग लिया, जिनमें दलित समेत समाज के सभी जातीय समूहों के प्रतिनिधि शामिल थे। तत्कालीन बिहार के अधिकांश प्रमुख राजनेताओं ने इस सम्मेलन में हिस्सा लिया। सम्मेलन में कुओं, विद्यालयों और मन्दिरों को पूरे तौर पर उन्मुक्त किए जाने की जोरदार अपील की गई, ताकि दलित वर्ग इनका बेरोकटोक उपयोग कर सकें। सम्मेलन में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं से दलित कल्याण के लिए वित्तीय व्यवस्था करने की मांग भी की गई। राजेन्द्र प्रसाद, जगजीवन राम, अनुग्रह नारायण सिंह, नवल किशोर प्रसाद आदि नेताओं ने इस आन्दोलन को संगठित रूप देने पर विचार किया और सम्मेलन के अन्त मं अस्पृश्यता विरोधी प्रान्तीय लीग की स्थापना की गई।[27] दिसम्बर 1932 में इस संगठन का नाम बदलकर हरिजन सेवक संघ रखा गया।[28] 1933 के अन्त तक आते–आते बिहार के 14 जिलों में इसकी शाखाएँ स्थापित हो गईं और जोरदार अस्पृश्यता विरोधी अभियान राज्यव्यापी स्तर पर चलाया गया। अब यह आंदोलन शहरों और कस्बों की परिधि से बाहर निकल ग्रामीण अंचलों में भी फैल गया।[29] 1934 में महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन की कमान अपने हाथों में सम्हाली और मार्च–अप्रैल 1934 में अपने बिहार दौरा में उन्होंने पूरे बिहार में एक प्रकार से दलित आन्दोलन की आँधी ही पैदा कर दी। हालांकि कट्टरपंथियों ने जहाँ–तहाँ गाँधी का प्रबल विरोध किया और गुंडा–गर्दी करने की कोशिश भी की गई। लेकिन गाँधी के नेतृत्व में अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन को अपार जनसमर्थन मिला और एक अद्भुत सामाजिक भाईचारे तथा सद्भाव के वातावरण का निर्माण हुआ।[30] विरोध के स्वर काफी मन्द हो गए। सवर्णों ने दलितों को गले लगाया और बिहार एक नया इतिहास रचने की दिशा में आगे बढ़ चला।[31]

लेकिन राह आसान नहीं थी। अस्पृश्यता निवारण के आंकड़े जितने लुभावने थे, जमीनी हकीकत उससे कहीं अधिक भिन्न थी। आन्दोलन पर सवर्ण हिन्दू नेताओं का वर्चस्व था और उनका एक ही मकसद था अम्बेदकर द्वारा पेश की गई धर्मांतरण की चुनौती का प्रत्युत्तर देना, ताकि हिन्दू समाज की वृहत्तर एकता को बनाए रखते हुए वोट की राजनीति में अपनी बढ़त कायम रखी जाय। यह बिहारी सवर्ण नेताओं की सुचिंतित रणनीति थी। यही कारण है कि दलित प्रश्न पर दलितों की अपेक्षा सवर्ण नेताओं का उनके पक्ष में कहीं अधिक आक्रामक तेवर होते थे। परिणामतः बिहार में स्वतंत्र दलित आन्दोलन का विकास नहीं हो पाया। फिर भी अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन से बिहार में एक दलित नेतृत्व जरूर पैदा हुआ और तुष्टिकरण के लिए ही सही दलित कल्याण की बहुत सारी बातें बिहार में हुईं।

अस्पृश्यता निवारण आंदोलन का सर्वाधिक सकारात्मक पहलू यह था कि इससे बिहार में जिस दलित चेतना का विकास हुआ, वह पूर्णतः महात्मा गाँधी और भारतीय राष्ट्रवाद के साथ जुड़ा हुआ था। जगजीवन राम के नेतृत्व में नवगठित बिहार डिप्रेस्ड क्लासेज लीग अम्बेदकरवादी धर्मान्तरण समर्थक ऑल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज लीग से बिल्कुल अलग ही नहीं, बल्कि उसका विरोधी भी था।[32] जब ऑल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज लीग ने अप्रैल 1937 में पटना में ईसाई मशीनरियों के सहयोग से सम्मेलन का आयोजन किया, कुछ धर्मांतरित दलितों ने इस सम्मेलन में भाग अवश्य लिया, किन्तु सम्मेलन पूरे तौर पर असफल रहा।[33] दरअसल जगजीवन राम, जगलाल चौधरी, भोला पासवान शास्त्री, भोला राउत, चन्द्रिका राम, भोला मांझी, नयन तारा, महावीर दास, शक्ति कुमार, जयदेव प्रसाद आदि के रूप में बिहार के दलितों का एक सशक्त नेतृत्व पैदा हो चुका था, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा में रहते हुए दलित चेतना को परवान चढ़ाया। यह बिहार में दलित आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव का ही परिचायक था कि बिहार के प्रथम कांग्रेसी मंत्रीमंडल में जगलाल चौधरी का मंत्री और जगजीवन राम को संसदीय सचिव का पद प्राप्तु हुआ। बिहार विधान सभा में अनुसूचित जाति के लिए सुरक्षित 15 स्थानों में 14 पर कांग्रेसी विधायक थे।[34] स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के सहभागी रहते हुए बिहार के दलितों को सत्ता में हिस्सेदारी मिली जो कालान्तर में बढ़ती चली गई।

वंचित समाज के हित में प्रथम कांग्रेसी मंत्रीमंडल ने अनके महत्वपूर्ण कार्य किए।[35] जमीन्दारों द्वारा आए दिन किए जानेवाले बेदखली को रोकने के लिए काश्तकारी संशोधन अधिनियम पारित किया गया। दलितों, पिछड़ों और रैय्यतों को राहत देने क उद्देश्य से इमें धारा 112 A जोड़ा गया, ताकि लगान वृद्धि अथवा कष्टकारी लगान से राहत मिल सके। वंचित समाज मूलतः श्रमिक समाज था। कांग्रेसी मंत्रीमंडल ने न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण कर उनकी आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयास किया। दलितों की शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि एवं सहकारिता कार्यों के लिए बजट में विशेष प्रावधान किया गया। दलितों के लिए जलापूर्ति, नालियों एवं मल निकासी की व्यवस्था और मलेरिया एवं अन्य महामारियों से राहत दिलाने के लिए जिला परिषदों को धन मुहैय्या किया गया। औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए छात्रावृत्ति एवं नामांकन में रियायत की व्यवस्था की गई। स्थानीय संस्थाओं के प्रशासन और प्रबंधन में दलित एवं पिछड़े वर्ग को प्रतिनिधित्व देने लिए सरकारी निर्देश जारी किए गए। एक राज्यादेश निर्गत कर नगरपालिकाओं में कार्यरत दलित कर्मचारियों की सेवा शर्त्तों का सुधार किया गया। वंचित समाज को शहरी सुविधाएँ प्रदान करने के लिए सरकार के निर्देश पर नगरपालिकाओं में विकास न्यास की स्थापना की गई। वंचित समाज के बीच शिक्षा के प्रसार और साक्षरता बढ़ाने के लिए अनेक कार्यक्रम अपनाए गए। दलित विद्यालयों की स्थापना, छात्रवृत्ति की व्यवस्था, बुनियादो शिक्षा, सामान्य विद्यालयों में

नामांकन के लिए प्रोत्साहन और शिक्षा प्रसार अभियान के द्वारा सरकार ने एक प्रकार से आंदोलन की शुरूआत की। वंचित समुदाय में बड़े पैमाने पर प्रचलित मद्यपान को रोकने के लिए मद्यनिषेध कानून बनाया गया। वंचित समाज को सामाजिक–आर्थिक क्षेत्र में विशेष अनुदान की व्यवस्था की गई। इस प्रकार अपने महज दो वर्षों के कार्यकाल में प्रथम कांग्रेस मंत्रीमंडल ने दलित कल्याण एवं उत्थान के लिए हर संभव प्रयास कर भावी शासन और सत्ता के लिए एक मापदंड एवं दिशा–निर्देश निर्धारित कर दिया।[36] यह सब कुछ दलित चेतना के विकास और उनके सुदीर्घ संघर्ष का परिणाम था। लेकिन प्रांतीय स्वायत्त शासन के अन्तर्गत जो कुछ भी किया गया, वह सूखे रेगिस्तान में पानी की चन्द बून्दों के समान था। वंचित समाज को आगे भी एक लम्बी लड़ाई लड़नी थी और सरकार द्वारा भी बहुत कुछ किया जाना था। यह तो बस एक छोटी सी शुरूआत थी, जिसने बस एक दिशा भर निर्धारित की थी।

20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में वंचित समाज और दलित आंदोलन में साम्यवादी और समाजवादी हस्तक्षेप ने इसे आक्रामक और क्रान्तिकारी तेवर प्रदान किया। यद्यपि समाजवादी आंदोलन के फलस्वरूप बिहार में पिछड़ी जातियों के राजनीतिक उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त हुआ और पूरे बिहार में वंचित समाज पर हमले तेज हुए, लेकिन इसने वंचित समाज को भी संगठित होने तथा राजनीतिक चेतना के विकास की प्रेरणा मिली।[37] फिर भी इस बात से इन्कार किया जा सकता कि साठ के दशक में वंचित समाज का कांग्रेस से मोहभंग होने लगा। तमाम संवैधानिक संरक्षण और आरक्षण तथा कल्याण योजनाओं एवं भूमि सुधार कानूनों की बाढ़ के बावजूद बिहार के दलितों की वास्तविक स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया था। यह अलग बात थी कि वंचित समाज में भी एक अभिजनवर्ग निश्चित आकार लेने लगा था और लाभ के सारे अवसरों को यही वर्ग हड़पने के लिए आतुर था।[38] वंचित समाज का विशाल तबका अशिक्षा, बीमारी, निर्धनता, शोषण, उत्पीड़न, बेकारी, भूमिहीनता, वेघरता और बेइज्जती का सामना करने के लिए अभिशप्त बना रहा। साम्यवादी संघर्ष की ओर उनका झुकाव सहज स्वाभाविक था। फलतः 1945 – 46 से ही बिहार में भूमि संघर्ष की तेज लहर पैदा हुई और सत्तर के दशक तक आते–आते सम्पूर्ण बिहार का देहाती अंचल रक्त रंजित रणभूमि में तब्दील हो गया। ऊँची जाति ही नहीं पिछड़ी जातियों के दबंग कुलक समूह के भीषण कोप का सामना वंचित समाज को करना पड़ा। सामूहिक आगजनी, लूट–पाट, उजाड़े–जाने और नरसंहार का एक दौर ही बिहार में चल पड़ा।[39] बिहार के वंचित समाज ने अपने अनुपम शौर्य, त्याग, बलिदान, पीड़ा, कष्ट और खून से एक नया इतिहास रचा, जिसमें एक प्रखर वर्ग चेतना विद्यमान थी। 27 मई 1977 को पटना जिला में बेलछी गाँव में दलितों के हुए भीषण नरसंहार के बाद बाबा नागार्जुन द्वारा लिखी गई कविता 'हरिजन गाथा' की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं[40] –

'दिल ने कहा – दलित मांओं के
सब बच्चे अब बागी होंगे
अग्निपुत्र होंगे वे, अंतिम
विप्लव में सहभागी होंगे

.....

दिल ने कहा – अभी जो भी शिशु
इस बस्ती में पैदा होंगे
सबके सब सूरमा बनेंगे
सब के सब ही शैदा होंगे.....

यह गारतलब है कि औपनिवेशिक शासन के शुरूआती दौर में ही वंचित समाज की कुछ जातियों को अपराधी घोषित कर उन्हें सरकारी और जमीन्दारों के दमन का लगातार शिकार बनाया जाता रहा। विडम्बना यह है कि आजादी मिलने के करीब पच्चीस वर्ष होते–होते अपने हक की लड़ाई लड रहे वंचित समाज के विशाल समूह को नक्सल करार देकर सदी के अन्त तक भू–स्वामियों और पुलिस के द्वारा जन संहार किया जाता रहा। उनके घर उजाड़े जाते रहे, बस्तियाँ जलायी जाती रहीं, उन्हें जिन्दा जलाया जाता रहा, गोलियों से छलनी किया जाता रहा।[41]

कांग्रेस से मोहभंग ने वंचित समाज को जहाँ एक ओर हिंसात्मक साम्यवादी क्रान्ति के मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिए मजबूर किया, वहीं वंचित समाज ने अलग–अलग राजनीतिक संश्रयों की खोज प्रारम्भ कर दी। दलित आन्दोलन के एक धड़े ने यूटर्न लेते हुए उस डा0 अम्बेदकर की पुनर्खोज की, जिसे राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान बिहार के दलितों ने खारिज कर दिया था। इतिहास की यह विडम्बना ही कही जायेगी कि बिहार के वंचित समाज के दलितों और पसमान्दा मुसलमानों एवं अकलियतों ने कांग्रेस से कदम से कदम मिलाते हुए राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। इस राजनीतिक संश्रय के कारण बिहार का पिछड़ावर्ग राजनीति में हाशिए पर बना रहा था। दूसरी ओर महाराष्ट्र के दलित आन्दोलन ने सदैव कांग्रेस के समाने चुनौती पेश की थी। आजादी के तीस वर्षों के बाद राजनीतिक विसात बदल चुकी थी। महाराष्ट्र के अम्बदकरवादी कांग्रेस का दामन थाम चुके थे, जबकि बिहार के वंचित समाज कांग्रेस से रिश्ता तोड़ पिछड़ा वर्ग की कुलक भूस्वामी जातियों से गठजोड़ कर रहा था। सम्पूर्ण क्रान्ति ने इस नए गठजोड़ को बुलन्दी प्रदान की और नए सामाजिक–राजनीतिक रिश्ते बने। इस रिश्ते के जोर के सामने बिहार में अम्बेदकरवाद एक बार फिर अपनी जुड़ें जमाने में विफल हो गया। मानों आदि से लेकर अन्त तक संश्रय की राजनीति

बिहार के वंचित समाज की नियति बन गई हो। स्वतंत्र दलित चेतना और आन्दोलन बिहार में कभी विकसित नहीं हो पाया।[43] औपनिवेशिक काल में जिसे राष्ट्रीय आन्दोलन के लिहाज से महान् ऐतिहासिक मार्ग माना गया, वहीं आजादी के बाद कमजोरी बन गई।

लेकिन बिहार के वंचित समाज के दोनों ही रास्तों अर्थात् क्रांति–पथ और संश्रय की राजनीति का एक लाभ जरूर हुआ और यह कि वंचित समाज के कल्याण और अभ्युत्थान के लिए आजादी के बाद बीसवीं सदी के अन्त तक कानूनों और प्रावधानों की बौछाड़ होती रही, कार्यक्रमों, अभियानों, परियोजनाओं तथा योजनाओं की बरसात होती रही और धन की बाढ़ बहती रही। 20वीं सदी के अन्त तक कागजों और सरकारी आंकड़ों से तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों बिहार के वंचित समाज ने वह सब कुछ पा लिया है, जिसके लिए वे पूरी सदी में संघर्षरत रहे थे। ऊपरी तौर पर ऐसा लग रहा था मानो वंचित समाज के लिए स्वर्ग धरती पर उतर आया है।

लेकिन हकीकत क्या थी ? वंचित समाज के संघर्ष के कुछ खास मुद्दों और हासिल की गई तथाकथित उपलब्धियों पर एक नजर डालने भर से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि 20वीं सदी के अन्तिम दशक और 21वीं सदी के शुरूआती वर्षों में बिहार के वंचित समाज के सामने समस्याएँ और चुनौतियाँ मुँह बाए खड़ी थी। बिहार में मजदूरों की जनसंख्या 95, 12, 892 थी, जिसमें 33.5 सिर्फ दलित जातियों के थे।[43] इन्हें न तो पूरे साल काम मिलता था और न ही सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी। कमियागिरी और बंधुआ प्रथा तो समाप्त हो चुकी थी, लेकिन निर्धनता और ऋणग्रस्तता के कारण ये अब भी पूरे तौर पर उबर नहीं पाये थे। काम के अभाव में बिहार के वंचित समाज का बड़ा हिस्सा महानगरों, कल–कारखानों और पंजाब–हरियाणा के खेत–खलिहानों तथा आसाम के बागानों में खून–पसीना बेचने के लिए मजबूर था। 2002 तक सरकार ने कुल 3,02,71704 एकड़ भूमि अधिशेष का 3,95,636 परिवारों के बीच वितरण किया था, जबकि भूदान से प्राप्त 2,65,555 एकड़ भूमि 3,37,812 परिवारों के बीच बांटी गई।[44] कागज पर बांटी गई जमीन में कितनी जमीन पर कितने लोगों को कब्जा मिल पाया, इस पर आज भी सवाल उठाये जाते हैं। खासकर भूदान आंदोलन तो बुरी तरह विफल हो गया, यह जगजाहिर है। फिर यदि सरकारी आंकड़ें को सही मान भी लिया जाय तो एक सवाल तो पैदा होता ही है कि क्या किसी भी लाभार्थी परिवार को निर्वाह योग्य जमीन मिल पायी ? उत्तर नकारात्मक ही होगा। इतना जरूर हुआ कि न्यूनतम मजदूरी और जमीन का प्रश्न रक्त रंजित संघर्ष का कारण बना रहा और हजारों लोग वेघर–वार तथा सैकड़ों मारे जाते रहे हैं। जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, बिहार में 21वीं सदी के प्रारम्भ में वंचित समाज में साक्षरता दर लगभग 20 प्रतिशत थी – पुरूषों में 31 प्रतिशत तो महिलाओं में 7 प्रतिशत।[45] साक्षरता

अभियान अब भी एक प्रमुख कार्य भार बना रहा था। वंचित समाज के छात्र–छात्राओं के लिए छात्रवृत्ति, छात्रावास, पोशाक, आवासीय विद्यालयों, औद्योगिक विद्यालयों, उत्पादन सह प्रशिक्षण केन्द्रों और वयस्क शिक्षा एवं सम्पूर्ण साक्षरता मिशन जैसे कार्यक्रमों के लिए आवंटित राशि के लगभग आधे हिस्से का तो उपयोग ही नहीं हो पाता था और बांकी बची आधी राशि का बहुत बड़ा हिस्सा भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ रहा था। सामाजिक सुरक्षा तथा संरक्षा के सारे कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं का भी लगभग यही हाल था। सरकारी नौकरियों में आरक्षित स्थानों को भरने में वंचित समाज असमर्थ था। 1995 तक 14 प्रतिशत आरक्षित स्थानों में अनुसूचित जाति का प्रतिनिधित्व मात्र 6.19 प्रतिशत था। यही हाल शिक्षण संस्थानों में आरक्षित स्थानों का भी था। अशिक्षित, निर्धन और श्रम पर जीवित बहुसंख्यक वंचित समाज के लिए शिक्षा और सरकारी नौकरी आकाश कुसुम ही बना रहा था। यह अलग बात है कि वंचित समाज का मलाईदार तबका जरूर मोटा हो रहा था। सत्ता के संगठन में हिस्सेदारी के सवाल पर भी वंचित समाज लगातार ठगा ही जाता रहा। एक तो 1978 के बाद 2000 तक बिहार से पंचायत चुनाव हुए ही नहीं, फिर जब 2001 में चुनाव कराए भी गए तो वंचित समाज को वाजिब प्रतिनिधित्व से मना कर दिया गया। बिहार में 8,471 में दलित मुखियों की संख्या मात्र 143 थी, पंचायत प्रमुखों का प्रतिशत सिर्फ 7.14 था और एक भी जिला परिषद का अध्यक्ष दलित नहीं था। कुल मिलाकर वर्त्तमान सदी के प्रारम्भिक वर्षों तक यही स्थिति थी – संवैधानिक और कानूनी संरक्षण और सुविधाएँ थी, कल्याण योजनाओं–परियोजनाओं की भरमार थी, सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा तथा विकास के यथेष्ट अवसर थे, लेकिन इन सबके बावजूद वंचित समाज का 70 प्रतिशत हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे अज्ञानता, गन्दगी, बीमारी, ऋणग्रस्तता, बेरोजगारी तथा अपमान की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर थे।[46] उनका पलायन बदस्तूर जारी था, बिहार श्रम आपूर्त्तिकर्त्ता प्रदेश में परिणत हो चुका था। टोले और बस्तियाँ उजड़ रही थीं, खेल–खलिहान सूने पड़ते जा रहे थे और जो बचे खुचे थे भी उन्हें भी चुन–चुन कर मारा जा रहा था। नरसंहार का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा था। अप्रैल 1995 और जून 2000 के बीच वंचित समाज के 367 लोगों को भू–स्वामियों के गुंडों और पुलिस ने मौत के घाट उतार दिया था। जाहिर है कि तमाम सुविधाओं, अवसरों और साधनों के बावजूद 21वीं सदी के प्रारम्भ तक बिहारी समाज का बहुसंख्यक भाग सही मायनों में वंचित ही बना रहा, विकास के किरणों से महरूम ही रहा।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत के बुद्धिजीवियों ने सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया की शुरूआत की थी। औपनिवेशिक सत्ता के अधीन इसे गति प्रदान करना मुश्किल था। फिर भी धीमी गति से ही नहीं सामाजिक रूपान्तरण के राष्ट्रीय लक्ष्य की ओर हमारा समाज बढ़ता रहा। आजादी के बाद आशा की नई किरण जागी। फिर क्या था ? संवैधानिक, कानूनी,

प्रशासकीय और आर्थिक स्तर पर वह सब कुछ किया गया, जिसका वंचित समाज हकदार था और समतामूलक समरस समाज के निर्माण के लिए जरूरी था। लेकिन अवसरों और सुविधाओं तक वंचित समाज के आम लोगों की पहुँच ही नहीं हो पायी। हर योजना, हर घोषणा जमीनी स्तर पर जाकर विभिन्न वर्गों और समुदायों के राजनीतिक–आर्थिक संघर्ष तथा प्रतिद्वन्द्विता का हिस्सा बनती रही। नेता–नौकरशाही–ठीकेदार संश्रय वंचित समाज के लिए आवंटित धन राशि का आपस में बंदरबांट करते रहे। स्वयं वंचित समाज का नेतृत्व भी इस बंदर बांट में शामिल था। अधिकारिक तौर पर 1990 के दशक को दलितों–पिछड़ों के सशक्तीकरण के दशक के रूप में जाना जाता है। किन्तु भ्रष्ट शासन और पहचान (जाति) आधारित राजनीति के बदौलत सशक्तिकरण वंचित समाज का नहीं, बल्कि नेताओं, अफसरों, ठीकेदारों तथा बिचौलियों का हुआ। कुल मिलाकर यहीं निष्कर्ष निकलता है कि कुशासन और पहचान आधारित विकास के कारण ही लगभग डेढ़ शताब्दी के लम्बे संघर्ष के बाद भी बिहार का वंचित समाज सामाजिक – आर्थिक मोर्चे पर वंचित ही बना रहा था और स्वतंत्र आंदोलन के अभाव में संश्रय की राजनीति का दामन थाम विकास में वाजिब हिस्सा पाने की बकंड प्रत्याशा में था।

लेकिन बिहार के आम अवाम ने यह सिद्धत से महसूस किया कि विकास आधारित सुशासन के बिना सामाजिक – आर्थिक राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता, वंचित समाज को विकास का वास्तविक भागीदार बनाए बिना सामाजिक रूपान्तरण के महायज्ञ की पूर्णाहुति नहीं हो सकती और वंचित समाज के शैक्षिक–आर्थिक उन्नति के बिना सशक्तीकरण के अभियान को पूरा नहीं किया जा सकता। बिहारवासियों के पास अतीत का अनुभव था, वर्त्तमान की चुनौतियाँ थीं। अतीत के अनुभव के आधार पर उन्होंने वर्त्तमान को दुरुस्त किया और 2005 के नवम्बर में बिहार में एक राजनीतिक क्रान्ति हुई, सत्ता का परिवर्तन हुआ, विकास आधारित सुशासन और वंचित समाज के सशक्तीकरण के एक नए दौर का प्रारम्भ हुआ। वंचित समाज की शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य तथा सम्मान वृद्धि के लिए पुख्ता व्यवस्था की गई, सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा के उपाय बढ़ाए गए और कारगर प्रणाली विकसित की गई, कार्यक्रमों के प्रभावी, क्रियान्वयन का ठोस इन्तजाम किया गया और घोषणाओं के त्वरित अमल की मुकम्मल व्यवस्था की गई। बिहार में विकास आधारित सुशासन की गाड़ी चल पड़ी थी, वंचित समाज के सशक्तीकरण का अधूरा सपना साकार होने लगा, वंचित समाज सत्ता में भागीदारी के साथ विकास की मुख्य धारा में शामिल हो गया। आज सम्पूर्ण बिहार एक शताब्दी पूर्व देखे गए सपने को साकार होता देख रहा है, समतामूलक समरस एवं समृद्ध समाज के राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरा होते देख रहा है और सर्वोपरि नई ज्ञान अर्थव्यवस्था के निर्माण में बिहार को आगे बढ़ता देख रहा है। इस ऐतिहासिक दौर के हम सभी साक्षी हैं। लेकिन मंजिल अभी भी काफी दूर है। हम सबों को मिलकर चलना होगा, वंचित समाज को और भी ऊपर उठाना होगा।

संदर्भ :

1. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, बिहार में दलित आन्दोलन (1913–2000), नयी दिल्ली, 2005, पृ0 15 – 16
2. उपर्युक्त
3. द्रष्टव्य, कम्प्रेहेंसिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, वो, III, पार्ट–III, पटना, 1976
4. द 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट मैनुअल, बिहार एंड उड़ीसा पुलिस, 1929, दिल्ली संस्करण, 1977
5. द्रष्टव्य, जी0 एन0 नतेशन (सम्पादक), द' डीप्रेस्ड क्लासेज, 1912 ; दिल्ली संस्करण, 1977
6. द 'इंडियन रिव्यू, दिसम्बर 1909
7. उपर्युक्त मई, 1910
8. उपर्युक्त, फरवरी, 1910
9. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, पूर्वोक्त, पृ0 91 – 92
10. द इंडियन रिव्यू, जून 1910
11. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, पूर्वोक्त, पृ0 102
12. उपर्युक्त, पृ0 107 – 108
13. द्रष्टव्य, गिरीश मिश्र एवं ब्रजकुमार पांडेय, बिहार में जातिवाद, दिल्ली, 2010
14. इंडियन रिव्य् खंड XXII, मद्रास, 1921, पृ0 71
15. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, पूर्वोक्त
16. बिहार बन्धु, 24 मई 1922 ; 24 फरवरी 1923
17. सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्य समाज का इतिहास, पृ0 315–324
18. फाइल 421/1919, डी0 ओ0 नं0 373, सी. 31 जनवरी 1919
19. सत्यकेतु विद्यालंकार, पूर्वोक्त
20. द' सर्चलाईट, 20 अप्रैल, 1927
21. देश, 19 मई 1927
22. बिहार–उड़ीसा पुलिस एब्सट्रैक्ट, 119/27
23. द' सर्चलाईट, 21 अक्टूबर 1928
24. देश, दिसम्बर 1928
25. के0 के0 दत्त, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन बिहार, खण्ड–2, पटना, 1957, पृ0 66
26. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, पूर्वोक्त, पृ0 117
27. फाइल, 317/32, बिहार राज्य अभिलेखागार
28. वार्षिक रिपोर्ट, हरिजन सेवक संघ, अक्टूबर 1932 से सितम्बर 1933

29. उपर्युक्त
30. के0 के0 दत्त, पूर्वोक्त, पृ0 202–03
31. महादेव देसाई, गाँधी इन इंडियन विलेज, पृ0 258–59
32. स्पीचेज एंड राइटिंग्स ऑफ जगजीवन राम, पटना
33. द' सर्चलाईट, 27 मार्च और 11 अप्रैल, 1937
34. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, पूर्वोक्त, पृ0 152
35. पी0 एन0 ओझा, हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस इन बिहार, पटना, 1985, पृ0 455–65
36. द्रष्टव्य, जी0 एस0 पी0 अम्बष्ट, कांग्रेस गवर्नमेंट इन बिहार, नयी दिल्ली, 1985, पृ0 130–193
37. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, नयी दिल्ली, 2001, पृ0 225
38. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, बिहार में दलित आन्दोलन, पूर्वोक्त, पृ0 283–84
39. बिहार के धधकते खेत खलिहानों से, सी0 पी0 आई0 एम0 एल0 प्रकाशन, 1986, पृ0 20–30
40. उद्धृत, प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, बिहार में दलित आन्दोलन, पूर्वोक्त, पृ0 281–82
41. समकालीन जनमत, 25–31 जनवरी 1987, पृ0 16–17
42. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, बिहार में दलित आन्दोलन, पूर्वोक्त, पृ0 280–84
43. स्रोत, जनगणना रिपोर्ट, 1991
44. प्रगति प्रतिवदन 2002–03, राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग, बिहार, पटना
45. वार्षिक प्रशासनिक प्रतिवेदन, 2000–2001 कल्याण विभाग, बिहार, पटना
46. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग, चौथा प्रतिवेदन, 1996–97 एवं 1997–98, बिहार, नयी दिल्ली, 1998